International Journal of Jyotish Research: 2019; 4(1): 27-30

International Journal of Jyotish Research
(वेदचक्षु)

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2019; 4(1): 27-30
© 2019 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 05-11-2018
Accepted: 10-12-2018

डॉ. देवेश प्रकाश आर्य
संस्कृत विभाग, लालबहादुर शास्त्री, संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली
पता– आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली, भारत

Correspondence
डॉ. देवेश प्रकाश आर्य
संस्कृत विभाग, लालबहादुर शास्त्री, संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली
पता– आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली, भारत

वेदों में पारिवारिक मूल्यों का महत्त्व

डॉ. देवेश प्रकाश आर्य

सारांश
संसार के समस्त प्राणियों में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, इसी सर्वोत्तम रचना के साथ इसे जो शक्तियाँ प्राप्त हैं वह अन्य प्राणी को प्राप्त नहीं है, मनन, चिंतन, विवेक, विश्वहित चिंतन, सर्वोन्नति के साथ समग्र परिवार की कामना हमारे पारिवारिक मूल्यों को सुदृढ़ करती है यही वेद का वेदत्व है।
परिवार में सुखी जीवन के साथ परिवार के सभी सदस्यों में प्रेमभाव की उत्पत्ति का भी वेदों में अति महत्त्वपूर्ण वर्णन है। परिवार एक प्रकार से राष्ट्र और समाज का संक्षिप्त रूप है इसमें पति–पत्नी, पुत्र–पुत्री, माता–पिता, दादा–दादी, नाना–नानी, भाई–बहिन, आदि सभी समन्वित हैं। एक सुन्दर और सुव्यवस्थित परिवार स्वर्ग है और एक विकृत और अव्यवस्थित परिवार नरक है इसलिए वेदों में प्राप्त पारिवारिक मूल्यों की शिक्षाओं की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है।

कूट शब्दः पारिवारिक मूल्यों, वेद, सुखी जीवन

प्रस्तावना
मानव जाति के इतिहास में वेदों को संसार का सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ स्वीकार किया है। भारतीय वैदिक परम्परा में वेदों को ईश्वर प्रदत्त अपौरुषेय ज्ञान माना गया है। विभिन्न शास्त्रकारों, धर्माचार्यों, सम्प्रदाय प्रवर्त्तकों तथा दार्शनिकों ने वेदों को मानव के लिए उपयोगी ज्ञान का भंडार तथा धर्म अधर्म, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य तथा विधि निषेध का निर्देशक स्वीकार किया है।
वर्तमान समय में आर्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानंद सरस्वती ने लुप्त वैदिक चर्चा का पुनरुद्धार किया है और जन साधारण के किए इन ग्रंथों का हिन्दी तथा संस्कृत में विद्वतापूर्ण भाष्य लिखा।
संसार के समस्त प्राणियों में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। इसी सर्वोत्तम रचना के साथ इसे जो शक्तियां प्राप्त है वह किसी अन्य प्राणी को प्राप्त नहीं है। मनन चिंतन, विवेक विश्वहित चिंतन, सर्वोन्नति के साथ समग्र परिवार की कामना हमारे मूल्यों को सुदृढ़ करती है यही वेद का वेदत्व है।
परिवार में सुखी जीवन के साथ परिवार के सभी सदस्यों में प्रेम भाव की उत्पत्ति का भी वेदों में अति महत्त्वपूर्ण वर्णन है।
इस संसार में प्रत्येक वस्तु किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाई गई है। जगन्नियन्ता ने इस सृष्टि में कोई वस्तु निरर्थक नहीं बनाई है। प्रत्येक पदार्थ के अपने पृथक् कर्म हैं। उनकी सिद्धि के लिए ही वह जीवन भर साधना करता है। मनुष्य संसार की सर्वश्रेष्ठ रचना है। जो शक्तियां मनुष्य को प्राप्त हैं, वे किसी अन्य जीव को प्राप्त नहीं है। मनन, चिन्तन, विवेक, विश्व–हित– चिन्तन, विश्व–नियन्त्रण, आत्मिक शक्ति की पराकाष्ठा प्राप्त करना, भौतिक उन्नति उपलब्ध करना, यह केवल मानव के लिए ही संभव है, अन्य जीवों के लिए नहीं। मानव जीवन के दो लक्ष्य हैं– भौतिक उन्नति करना और मोक्ष प्राप्त करना। भौतिक उन्नति की गणना अभ्युदय में है और कर्म–बन्धनों से मुक्त होकर आवागमन के चक्र से छूटना मोक्ष है। इसको ही वैशेषिक दर्शन में धर्म और योगदर्शन में दृश्य जगत् की उपयोगिता बताया गया है।[1]
सुख के रूप है– भौतिक सुख और पारमार्थिक सुख। सांसारिक सुखों और भोगों की गणना भौतिक सुख में है। इसको शास्त्रीय भाषा में प्रेयस् या प्रेयमार्ग कहा जाता है। यह सुख क्षणिक है, नश्वर है, जीवन को अपने लक्ष्य से च्युत करने वाला है और अन्त में विनाश की ओर ले जाने वाला है। सामान्य व्यक्ति के सम्मुख यही सुख रहता है। वह धन, जन, बन्धु–बान्धव, भूमि, गृह, स्वर्ण आदि को ही सर्वस्व समझता है। परन्तु यह उसकी भूल है। यह जीवन का नाशक तत्त्व है। इस सुख का अन्त सदा दुःखदायी होता है।
दूसरा सुख पारमार्थिक सुख है। इसे आनन्द कहते हैं। यह परमात्मा की शरण में जाने से प्राप्त होता है। इसमें मानसिक और आत्मिक उन्नति है। जीवात्मा परमात्मा का सानिध्य प्राप्त करता है। इसको श्रेयस् या श्रेयमार्ग कहते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति इस श्रेय्मार्ग को अपनाते हैं। इसलिए कठ उपनिषद् में कहा गया है कि प्रेय और श्रेय दोनों मार्ग मनुष्य के सामने आते हैं।

सामान्य जन अपनी आजीविका की दृष्टि से प्रेयमार्ग को अपनाते हैं और विद्वान् व्यक्ति श्रेयमार्ग को अपनाते हैं। जो श्रेयमार्ग को अपनाते हैं, उनका सदा कल्याण होता है।[2]

सुख और दुःख की परिभाषा महाभारत में दी गई है कि जो स्वाश्रित कर्म हैं, वे सुख हैं। जिसके लिए दूसरे पर निर्भर रहना होता है, वह दुःख है। अपनी शक्ति के अनुकूल कार्यों को फैलाना, सुख का साधन है। इसके विपरीत दूसरों पर आश्रित रहते हुए काम करना दुःख का कारण है।[3]

इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य को अपनी शक्ति देखकर ही उद्योग आदि का विस्तार करना चाहिए। आत्मनिर्भरता में सुख है, पराश्रयता में दुःख है।

सुख और दुःख का एक दूसरा लक्षण भी है। यह अधिक रुचिकर है। सुख और दुःख शब्द दो शब्दों को मिलकर बने हैं। इन शब्दों में ही इनकी परिभाषा भी छिपी हुई है। सु + ख, ख का अर्थ इन्द्रिय है। अपनी इन्द्रियों को सु अर्थात् सुन्दर बना लेना ही सुख है। अपनी इन्द्रियों को अच्छे कामों में लगाना सुख है। इसके विपरीत दुः+ख अर्थात् अपनी इन्द्रियों को बिगाड़ लेना, उनसे दूषित कर्म करना ही दुःख है।

अतएव सुख चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपनी इन्द्रियों को बस में रखे, इन्द्रियों को बुरे कामों में न लगावे। न बुरा देखे, न बुरा सुने, न बुरा बोले। यदि व्यक्ति अपने आपको बुराई से बचा लेता है तो वह सुखी है, यदि बुराई से नहीं बचा सकता या नहीं बचता है तो वह दुःखी रहता है। सबको सुख अभीष्ट है, अतः दुर्गुणों को, बुराइयों को, अनुचित कार्यों को छोड़ना ही सुख का एकमात्र साधन है।

परिवार सबसे छोटी इकाई है। उससे बड़ी इकाई समाज है, उससे आगे राष्ट्र व देश और उससे बड़ी इकाई विश्व है। हमारा उद्देश्य है कि सबसे छोटी इकाई को सुखी, प्रसन्न, सन्तुष्ट और योगक्षेम से युक्त करें। व्यक्ति सुखी है तो समष्टि भी सुखी होगा। व्यष्टि और समष्टि, व्यक्ति और समाज, परस्पर संबद्ध है। व्यक्ति की उन्नति से समाज उन्नत होता है और समाज की उन्नति से व्यक्ति। परिवार के लिए विचारणीय है कि उसे किस प्रकार सुखी, समृद्ध और शान्तियुक्त बनाया जाए।

परिवार एक प्रकार से राष्ट्र और समाज का संक्षिप्त रूप है। इसमें पति–पत्नी, पुत्र–पुत्री, माता–पिता, दादा–दादी, नाना–नारी, भाई–बहिन और पौत्र–पौत्री आदि सभी समन्वित है। परिवार को सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाना एक राष्ट्र को सुन्दर बनाने के तुल्य है। एक सुन्दर और सुव्यवस्थित परिवार स्वर्ग है और एक विकृत तथा अव्यवस्थित परिवार नरक है। हमारा लक्ष्य है परिवार को स्वर्ग बनाना और योगक्षेम से युक्त करना। इसके लिए वेदों में प्राप्त शिक्षाओं की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है।

पारिवारिक व्यक्तियों के कर्त्तव्य

पति–पत्नी– पति और पत्नी के कर्तव्यों की विस्तृत व्याख्या दी जा रही है। वेदों का आदेश है कि दम्पत्ती का जीवन तभी सुखमय हो सकता है, जब वे समन्वित ढंग से कार्य करेंगे। उनमें परस्पर सद्भाव, पारस्परिक स्नेह, विचारों का आदान–प्रदान और मिलकर काम करने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। जहाँ पति या पत्नी केवल अपने हित की बाच सोचते हैं, वहाँ दुःख, क्लेश मनोमालिन्य आदि प्रारम्भ होते हैं। अतः मंत्र कहता है कि पति–पत्नी मिलकर गृहस्थ धर्म का निर्वाह करें।[4]

पत्नी का कर्तव्य बताया गया है कि वह पति से सदा मधुर और शान्तियुक्त वाणी बोले। मधुर वचन पारस्परिक स्नेह को दृढ़ करता है, सौमनस्य लाता है और आन्तरिक आनन्द देता है। कटु वचन घृणा, द्वेष, ईर्ष्या और असहिष्णुता को जन्म देता है। अतः कटुवचन और ताना देना सर्वथा त्याज्य है।[5]

यजुर्वेद में पत्नी के कुछ गुणों और कर्तव्यों का वर्णन है। पत्नी स्वयं तेजस्विनी हो, योग्य हो, विदुषी हो, स्वयं नियमों का पालन करने वाली हो, परिवार की मर्यादाओं की रक्षा करे और परिवार को पुष्ट करे। उसका कर्त्तव्य है कि वह परिवार को नियन्त्रण में रखे, सबके भोजनादि की व्यवस्था करे, परिवार की सुरक्षा करे।[6]

माता–पिता, सास–ससुर– माता–पिता एवं सास ससुर का कर्त्तव्य बताया गया है कि अपनी सन्तान से तथा पुत्र–वधू आदि से अत्यन्त मधुर वचन बोलें तथा उदार हृदय से उन्हें धन दें। मधुर वचन पारिवारिक शान्ति का कारण है। कटुवचन से पिता–पुत्र, सास–बहु आदि में निकृष्ट विवाद, मनोमालिन्य और कटुताएं उत्पन्न होती है, अतः कटुवचन और कटु व्यवहार सर्वथा त्याज्य है। उदार हृदय से पुत्रादि और बंधुओं को धन देने से परिवारिक शान्ति रहती है और परिवार की श्रीवृद्धि होती है।[7]

माता–पिता और सास–ससुर का कर्तव्य है कि अपने जीवनकाल में ही वे पुत्रादि को उनका अधिकार दे दें तथा संपत्ति में उनके हिस्से का अंश उन्हें दे दें। लोभवश या असावधानी के कारण अपने सामने संपत्ति का विभाजन न करने से पिता आदि की मृत्यु के पश्चात् भाइयों में, बहिनों में तथा अन्य संबंधियों में अनेक प्रकार के आर्थिक विवाद उत्पन्न हो जाते हैं, अतः दूरदर्शिता इसी में है कि संपत्ति का यथा योग्य विभाजन पिता आदि अपने सामने ही कर दे।[8]

पुत्रादि का कर्तव्य है कि वे अपने माता–पिता का सदा कल्याण सोचें और उनका हित करें। यही पितृयज्ञ हैं। इससे सन्तान पैतृक ऋण में उऋण होती है।[9]

माता का कर्तव्य बताया गया है कि वह शिशुओं की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखे। वे बच्चों के लिए नए वस्त्र बनुें और बनावें।[10]

भाई–बहन– वेद की शिक्षा है कि भाई–भाई, भाई–बहिन और बहिन–बहिन परस्पर प्रेम से रहें। वे अपने पारस्परिक मतभेदों आदि को प्रेम से सुलझा लें। उनका कोई भी विवाद कटुता धारण न करे।[11]

वेद का कथन है कि भाई–भाई प्रेम से रहे। वे छोटे–बड़े का भेदभाव न करें। वे मिलकर काम करते हैं तो उन्हें सदा सौभाग्य प्राप्त होगा।[12]

भाई–बहिन का प्रेम अत्यन्त सात्त्विक है। उसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने देनी चाहिए। उनका स्नेह, सौहार्द और समत्व आदर्श रूप में ही रहना चाहिए।

पुत्र–पुत्री– पुत्र का कर्तव्य है कि वह माता–पिता का आज्ञापालक हो। उनकी सदा सेवा करे।[13]

पुत्र की प्राप्ति का बहुत महत्त्व है। पुत्र की प्राप्ति से माता–पिता अपने पूर्वजों के ऋण से उऋण होते हैं। अतः योग्य सन्तान का होना वंश वृद्धि के लिए आवश्यक है।[14]

पुत्र के गुण बताए गए हैं कि वह सुन्दर हो, शुभ कर्म करने वाला हो, माता–पिता का कृतज्ञ हो, वीर हो, कर्मठ हो, उत्तम गुणों से युक्त हों, आस्तिक हो, माता–पिता का आज्ञाकारी हो, सज्जन हो, ऐश्वर्य–संपन्न हो, हृष्ट–पुष्ट शरीर वाला हो।[15]

परिवार में क्या गुण होने चाहिए?

परिवार को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए वेदों में कुछ गुणों का निर्देश है। इन गुणों को धारण करने वाले परिवार सदा सुखी, प्रसन्न और समृद्ध रहते हैं। उस घर में श्री का निवास होता है, पारस्परिक स्नेह और विश्वास होता है तथा शान्ति का वातावरण रहता है।

वेद का कथन है कि आस्तिकता सब सुखों का मूल है। जिस परिवार में आस्तिकता है, वहां दोष, दुर्गुण और पाप स्वयं नष्ट हो जाते हैं। अतः परिवार के सभी व्यक्तियों में आस्तिकता एवं ईश्वर–विश्वास का भाव जागृत होना चाहिए।[16]

परिवार में संगठन और एकता होनी चाहिए। सब एक दूसरे से प्रेम करें। सबके हृदय मिले हुए हों। पारस्परिक द्वेष की भावना को दूर करें। सबमें मानसिक सौहार्द हो। मिलकर एक लक्ष्य को लेकर

चलें। सबमें समन्वय की भावना हो। सबमें पारस्परिक विश्वास हो। छोटे–बड़े का भेद–भाव भुलाकर सौभाग्य के लिए निरन्तर यत्नशील हो। मिलकर चलें, मिलकर बोलें और एकमत होकर निर्णय करें।[17]

वेद का यह कथन है कि परिवार में प्रेम, धैर्य और स्वावलम्बन गुण होने चाहिए, तभी परिवार में रायस्यपोष और योगक्षेम रहता है।[18]

प्रसन्नचित्त रहना न केवल परिवार की सुख–शान्ति के लिए उपयोगी है, अपितु अपने स्वास्थ्य और विकास के लिए भी आवश्यक है।[19]

परिवार में सुखपूर्वक जीवन–निर्वाह के लिए आवश्यक है कि धन–समद्धि हो, आर्थिक सुख–सुविधाएं हों और अन्न का कोष हो।[20]

लक्ष्मी के दो रूप हैं– पवित्र और अपवित्र, शुभ और अशुभ। पवित्र साधनों से प्राप्त लक्ष्मी शुभ और श्रेयस्कर है। अनुचित साधनों से अर्जित लक्ष्मी अशुभ, अपवित्र और नाशकारी है। अतः वेदों में शुभ लक्ष्मी के संग्रह का ही आदेश दिया गया है।[21]

परिवार के व्यक्ति नीरोग और स्वस्थ हों। स्वस्थ मनुष्य ही इस संसार के सुखों का भोग कर सकते हैं और जीवन को सुखमय बना सकते हैं।[22]

वेदों के अनुसार धर्म और श्री का स्थायी संबन्ध है। जहां धर्म का निवास है, वहां श्री और सुख है। अतः अथर्ववेद में श्री और धर्म को साथ रखा गया है। स्थायी सुख के लिए धर्म का पालन अनिवार्य है।[23]

परिवार के कर्त्तव्य कर्म

परिवार के व्यक्तियों का कर्तव्य है कि उत्तम गुणों को अपनावें, जिससे परिवाद सदा सुखी रहे। इसके लिए वेदों में अनेक साधन बताए गए हैं। उनका यहां संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

परिवार के व्यक्ति सद्गुणों को अपनावें और दुर्गुणों को छोड़ें। भद्र को ग्रहण करें, पापों को छोड़ें। अपनी इन्द्रियों से भद्र वस्तुओं को ही ग्रहण करें। अशुभ वचन आदि का परित्याग करें। सद्गुण जीवन की आधारशिला हैं। पाप विनाशक तत्त्व हैं।[24]

परिवार को सुखी बनाने का एकमात्र उपाय है कि परिवार के सभी व्यक्ति पुरुषार्थी हों। वे यथाशक्ति पूरा परिश्रम करें। परिश्रम से ही सभी प्रकार की सफलता प्राप्त होती है। कर्महीन की सारी योजनाएं असफल होती हैं।[25]

परिश्रम के साथ ही स्वावलम्बन गुण को भी अपनाना आवश्यक है। स्वावलम्बी को दुःख और कष्ट नहीं सताते। उसे संसार मधुमय दीखता है। स्वावलम्बी के पास श्री और सुख स्वयं आते हैं।[26]

परिश्रम और स्वावलम्बन के साथ ही जागरूकता अत्यावश्यक है। यदि व्यक्ति जागरूक नहीं रहेगा, तो उसका सारा परिश्रम नष्ट हो सकता है। जागरूक को ही विद्या, ऐश्वर्य, प्रभुत्व आदि सब कुछ प्राप्त होता है। अतः मंत्र कहता है कि प्रमाद–रहित होकर सदा जागरूक रहो।[27]

परिवार को स्वर्ग बनावें। जहां परिवार में स्नेह, सद्भाव, पुरुषार्थ आदि गुण होते हैं, वहां नीरोगता स्वस्थता और आनन्द की प्रचुरता होती है।[28]

वेद की शिक्षा है कि स्वपुरुषार्थ से उपार्जित धन का ही भोग करना चाहिए। दूसरों की संपत्ति देखकर लोभ नहीं करना चाहिए। संतोष ही सुख का साधन है। असन्तोष से सदा दुःख मिलता है।[29]

परिवार में आनन्द का वातावरण बनाने के लिए आवश्यक है कि परिवार के व्यक्ति प्रसन्नचित्त रहें। आमोद–प्रमोद का वातावरण रहे। हास्य, विनोद, प्रसन्नचित्तता और स्वभाव–माधुर्य अपने स्वास्थ्य के लिए शुभ है और परिवार की प्रसन्नता के लिए भी शुभ है।[30]

परिवार के सुख के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति निर्भय और साहसी हों। वे सभी आपत्तियों और संकटों का सामना करने के लिए संनद्ध रहें। जहाँ निर्भयता और साहस है, वहां संकट नहीं रुकते। उदाहरण दिया गया है कि सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मशक्ति, क्षत्रशक्ति कभी नहीं डरते हैं, उसी प्रकार कभी न डरें।[31]

परिवार के अभ्युदय के लिए आवश्यक है कि परिवार के व्यक्ति, ओजस्वी, तेजस्वी और यशस्वी हों। ओजस्वी व्यक्ति ही जीवन में कुछ उल्लेखनीय कार्य कर पाते हैं और यशस्वी होते हैं।[32]

परिवार की समृद्धि के लिए सत्यनिष्ठा, सत्य–व्यवहार और उचित साधनों को अपनाना आवश्यक है। मंत्र का कथन है कि जहां सत्यभाषण हैं, वाणी में माधुर्य है, आमोद–प्रमोद है, वहां सौभाग्य है और धनादि की समृद्धि है।[33]

मधुर वचन को पारिवारिक शान्ति का साधन बताया गया है। माता–पिता बालकों से मधुर वचन बोलें। पत्नी पति से मधुर वचन बोले और सब परस्पर मधुर वचन ही बोलें।[34]

वेदों की शिक्षा है कि प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह निर्धनों, निराश्रितों और दीन–हीनों को अवश्य दान दे। जो दान नहीं देता है और केवल अपने पेट की पूर्ति करता है, उसे अत्यन्त निकृष्ट और महापापी बताया गया है। दान देने से श्री और यश दोनों बढ़ते हैं।[35]

वेदों में अतिथि–सत्कार का बहुत महत्व वर्णित है। वेद का आदेश है कि अतिथि को खिलाए बिना भोजन न करे। वेदज्ञ ही सबसे पूज्य अतिथि है। जो अतिथि को बिना खिलाए भोजन कर लेते हैं, उनकी समस्त श्री और समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं।[36]

गृहस्वामी का कर्तव्य है कि यह वह देखे कि परिवार में कोई भूखा–प्यासा न रहे।[37]

माता–पिता का कर्तव्य है कि परिवार के सदस्यों को यथायोग्य धन देते रहें। प्रत्येक को अपना हिस्सा मिल जाना चाहिए। यथासंभव वे अपने जीवन–काल में ही पैतृक संपत्ति आदि का विभाजन कर दें।[38]

परिवार में सदा समृद्धि रहे, इसके लिए सदा प्रयत्नशील रहे। अतएव योगक्षेम की कामना की गई है। योग का अर्थ है– धन की प्राप्ति और क्षेम का अर्थ है– धन की सुरक्षा। अतएव योगक्षेम शब्द कुशलता का वाचक हो गया है।[39]

धनोपार्जन के लिए दूर देशो में भी जाने का विधान है। दूर देशों में जाने से धन ज्ञान और अनुभव की वृद्धि होती है।[40]

परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह राष्ट्र की सुरखा और समृद्धि में पूरा योगदान करे। यह राष्ट्र–रक्षा में जागरूक रहे और देश के लिए आवश्यकतानुसार अपना जीवन भी अर्पित करें।[41]

तपस्वी एवं साधनमय जीवन व्यतीत करें तथा वेदों के भक्त हों। वेदों से ही मनुष्य को अपने कर्तव्यों का ज्ञान होता है।[42]

काम के दो रूप माने गए हैं– शुभ और अशुभ। अशुभ काम भोग एवं विषय–वासना को बढ़ाता है तथा विषयाक्ति के द्वारा जीवन को नष्ट करता है। शुभ काम संकल्प–शक्ति और इच्छा शक्ति और इच्छा शक्ति को देता है। यह जीवन को उन्नत करता है, अतः ग्राह्य है।[43]

इन गुणों को अपनाने से परिवार बनते हैं। उनकी श्रीवृद्धि होती है और परिवार में सुख–समृद्धि का निवास होता है।

परिवार के अकरणीय कर्म

परिवार क्यों बिगड़ते हैं? क्यों टूटते हैं? क्यों पारस्परिक सद्भाव समाप्त होता? क्यों परिवार नष्ट होते हैं? इन बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कुछ दुर्गुण हैं, दोष हैं तथा कुछ न्यूनताएं हैं, जिनसे परिवार नष्ट होते हैं। श्रेष्ठ जनों का कर्तव्य है कि इन दोषों से अपने परिवार को बचावें।

परिवारों के टूटने का मुख्य कारण है– स्वार्थपरता, धनलिप्सा और स्वकेन्द्रित होना। जब मनुष्य केवल अपने स्वार्थ को मुख्य समझने लगता है ओर सारी संपत्ति पर अपना अधिकार चाहता है, तब ईर्ष्या, द्वेष, कटुता ओर कलह उत्पन्न होते हैं। अतः स्वार्थ की मुख्यता न देकर परिवार के हित को मुख्यता देनी चाहिए। इसीलिए वेद का कथन है कि अपने अंश का ही भोग करो, दूसरों की संपत्ति की ओर लालच से न देखो। त्याग की भावना बढ़ावें।[44]

क्रोध, ईर्ष्या और कटुभाषण परिवार के नाशक तत्त्व हैं। इनका परित्याग आवश्यक है।[45]

विषय–वासनाओं में न फंसें। अधिक भोगवादी प्रवृत्ति सदा दुःख का कारण है, अतः अधिक सुखमय जीवन बिताने की प्रवृत्ति दुःखद है। यह शारीरिक और मानसिक शकित को क्षीण करती है।[46]

अनुचित साधनों से प्राप्त लक्ष्मी विनाश का कारण है। इससे परिवार की श्री और गौरव समाप्त होते हैं। अतः अशुभ लक्ष्मी या काले धन से बचें।[47]

दुर्गुणों, पापों और दुर्व्यसनों से बचें। दुर्व्यसन व्यक्ति, परिवार और समाज तीनों को नष्ट करते हैं। अतः इनको परिवार में प्रविष्ट न होने दिया जाए।[48]

असत्य को छोड़ें। असत्य–व्यवहार परिवार का नाशक है। यह जीवन को नरक बना देता है। मनुष्य को अपने लक्ष्य से च्युत कर देता है।[49]

ऋणी होना परिवार के लिए दुःखकर है, अतः ऋण से सदा बचना चाहिए। जो अनृणी हैं, वे ही संसार में प्रसन्न और निश्चिन्त रह सकते हैं।[50]

परिवार में भय का भाव नहीं आने देना चाहिए। सभी को उत्साही, साहसी और निडर होना चाहिए।[51]

वेद के आदेशानुसार यदि इन दुर्गुणों से दूर रहें तो परिवार सदा सुखी और प्रसन्न रहेगा। यही पारिवारिक महत्त्व वेदों में वर्णित है।

संदर्भ

1. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसिद्धिः स धर्मः।
   वैशेशिक 1–1–2 भोगापवगार्थं दृश्यम्। योगदर्शन 2–18
2. श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः, तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः।
   श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते, प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।
   कठ. 1–2–2
   तयोः श्रेय अददानस्य साधु भवति,
   हीयतेऽर्थाद् य उ प्रेयो वृणीते।। कठ. 1–2–1
3. सर्व परवशं दुःखं, सर्वमात्मवशं सुखम्।
   एतद् विद्यात् समासेन, लक्षणं सुखदुःखयोः।। महाभारत
4. अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु। (मंत्र 10, 83) ऋग. 6–15–19
5. जाया पत्ये मधुमतीं, वाचं वदतु शान्तिवाम्। (मंत्र 6) अथर्व. 3–30–02
6. यन्त्री राड् यन्त्रयसि यमनी ध्रुवासि धरित्री। (मंत्र 33) यजु. 14–22
   मूर्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धत्रर्यसि धरणी। (मंत्र 34) यजु. 14–21
7. पिता माता मधुवचाः सुहस्ता। (मंत्र 21) ऋग. 5–43–2
8. प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते। (मंत्र 22) ऋग. 2–13–4
9. स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तं। (मंत्र 20) अथर्व. 1–31–4
10. वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति। (मंत्र 17) ऋग. 5–57–6
11. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
    (मंत्र 24) अथर्व. 3–30–03
12. अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते,
    सं भ्रातरो बावृधुः सौभाग्य। (मंत्र 25) ऋग्वेद 5–60–5
13. अनुव्रतः पितुः पुत्रो, मात्रा भवतु संमनाः। (मंत्र 6) अथर्व. 3–30–02
14. एतत् तदग्ने अनृणो भवामि, अहतौ पितरौ मया।। (मंत्र 32) यजु. 19–11
15. ते सूनवः स्वपसः सुदंससः। (मंत्र 26) ऋग. 1–159–3
    यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो। (मंत्र 27) ऋग. 3–4–9
16. ईशा वास्यमिदं सर्वम्। (मंत्र 3) यजु. 40–1
17. सह्रदायं सांमनयम् अविद्वेषं कृणोमि वः। (मंत्र 5) अथर्व 3–30–1
    समानी व आकूतिः, समाना ह्रदयानि वः। (मंत्र 65) ऋग. 10–191–4 सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
    (मंत्र 66) यजु. 10–191–2
18. इह रतिरिह रमध्वम् इह धृतिरिह स्वघृतिः स्वाहा। (मंत्र 56) यजु. 8–51
19. विश्वदानीं सुमनसः स्याम। (मंत्र 80) ऋग. 6–52–5
20. पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च। (मंत्र 67) अथर्व. 12–5–10
    अग्ने गृहपतेभि द्यम्नमभि सह आयच्छस्व। (मंत्र 68) यजु. 3–39
21. एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य। (मंत्र 47) अथर्व. 7–115–4
    रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः, याः पापीस्ता अनीनशम्। (मंत्र 48) अथर्व. 7–115–4
22. स्ववेदशो अनमीवो भवा नः। (मंत्र 19) ऋग 7–54–1
23. श्रीश्च धर्मश्च। (मंत्र 14) अथर्व. 12–5–7
24. यद् भद्रं तन्न आसुव। (मंत्र 2) यजु. 30–3
    भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः। (मंत्र 81)
25. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिाजीविषेच्छतं समाः। (मंत्र 4) यजु. 40–2
    कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मो सव्य अहितः। (मंत्र 57) अथर्व. 7–50–8
26. स्वतवांश्च प्रघासी च। (मंत्र 18) यजु. 7–84
    इह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा। (मंत्र 56) यजु. 8–51
27. स्वे गये जागृह्यप्रयच्छन्। (मंत्र 61) अथर्व. 2–6–3
    यो जागार तमृचः कामयन्ते। (मंत्र 60) ऋग. 5–44–14
28. यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति। (मंत्र 41) अथर्व. 6–120–3
29. तेन त्यक्तेन भुजीया, मा. गृधः कस्यस्विद् धनम्। (मंत्र 3) यजु. 40–1
30. क्रीडी च शाकी चोज्जेषी। (मंत्र 18) यजु. 17–84
31. मा भेर्मा संविक्था ऊर्ज धत्स्व। (मंत्र 85) अथर्व. 2–15–3
32. ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च। (मंत्र 14) अथर्व. 12–5–7
    ओजोस्योजो मे दाः स्वाहा। (मंत्र 69) अथर्व. 2–17–1
33. सुनूतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः। (मंत्र 92) अथर्व. 7–60–6
34. जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्। (मंत्र 6) अथर्व. 3–30–02
    पिता माता मधुवचाः सुहसता। (मंत्र 21) अथर्व. 5–43–02
35. शहस्त समाहर, सहस्रहस्त सं किर। (मंत्र 74) अथर्व. 3–24–5
    केवलाघो भवति केवलादी। (मंत्र 76) ऋग्. 10–117–6
36. एष वा अतिर्थियत् श्रोत्रियः, तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात्। (मंत्र 36) अथर्व. 9–6–36
37. अक्षुध्या अतष्या स्त। (मंत्र 43) अथर्व. 6–60–4
38. प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते। (मंत्र 22) ऋग. 2–13–4
39. पाहि क्षेम उत योगे ावरं नः। (मंत्र 12) ऋग. 7–54–3
40. ऐष्यामि भद्रेणा सह्। (मंत्र 93) अथर्व. 7–60–7
41. वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा। यु. 9–23
    वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम। अथर्व. 12–1–62
42. अग्ने तपस्तप्यामहो। (मंत्र 82) अथर्व. 7–61–2
43. यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्राः। (मंत्र 64) अथर्व. 9–2–25
44. तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कयस्विद् धनम्। (मंत्र 3) यर्जु. 40–1
45. सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः। (मंत्र 94) अथर्व. 7–60–7
46. अन्यत्र पापीरप वेशया धियः (मंत्र 64) अथर्व. 9–2–25
47. या या लक्ष्मीः पतयालूग्जुष्टा. (मंत्र 52) अथर्व. 7–115–2
48. पाप्या हतो न सोमः। (मंत्र 85) यर्जु. 6–35
49. पापासः सन्तो अनृता असत्या। (मंत्र 99) ऋग. 4–5–5
50. अनृणा अस्मिन् अनृणाः परस्मिन्। (मंत्र 98) अथर्व. 6–117–3
51. गृहा मा बिभीत मा वेपध्वम्। (मंत्र 17) यजु. 3–41